रघुवीर सहाय के काव्य में अप्रस्तुत विधान के विविध रूप

सत्यप्रकाश सेन
शोध छात्र,
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बूंदी, राजस्थान

सारांश

आधुनिक हिन्दी कविता ने हर स्तर पर अपने शिल्प को तराशकर युगानुकूल परिवर्तन किया है। आधुनिक हिन्दी कविता ने बिंब, प्रतीक, अप्रस्तुत, व्यंग्य, सपाटबयानी तक सफर करते हुए प्रमुख और मौलिक शिल्पविधि के अंगों का विकास किया है। विशेषकर प्रयोगवाद और नयी कविता शैल्पिक प्रयोगों के लिए हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व रखती है। प्रयोगवाद और नयी कविता में शिल्प के विविध अंगों के साथ अप्रस्तुत विधान के कई प्रयोग हुए हैं। कविता के लिए अप्रस्तुत अनिवार्य उपादान है। अप्रस्तुत ही वह आधार है जिसके माध्यम से सामान्य जन भाषा काव्य भाषा का रूप ग्रहण करती है। अप्रस्तुत के माध्यम से अमूर्त, गहन, जटिल, मिश्रित सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को सहज ही मूर्त, स्पष्ट एवं हृदयग्राह्य रूप में अभिव्यक्त कर दिया जाता है। अप्रस्तुत विधान के कारण सूक्ष्म रस चेतना स्वतः मूर्त हो जाती है। इसी के सहयोग से कवि काव्य भाषा को वैशिष्ट्य प्रदान करता है। शब्दों की मूल प्रकृति को निरावृत कर उसकी सूक्ष्म अर्थ छवियों का उद्घाटन करता है। अनुभूति की रमणीय सम्प्रेषणीयता अप्रस्तुत का मुख्य कार्य है। दूसरा सप्तक से काव्य लेखन की शुरूआत करने वाले रघुवीर सहाय की काव्य यात्रा ने प्रयोगवाद, नयी कविता, सोठोत्तरी कविता आदि के अनेक पड़ावों को पार किया है। इनकी कविता में प्रयोगवाद की प्रयोगधर्मिता, नयी कविता की बौद्धिक प्रतिष्ठा और समकालीन कविता की सपाटबयानी के दर्शन होत हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में रघुवीर सहाय के **'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरूद्ध', हँसो–हँसो जल्दी हँसो', 'लोग भूल गये हैं', और 'कुछ पते कुछ चिट्टियाँ'** काव्य संग्रहों का अप्रस्तुत विधान के माध्यम से परीक्षण करते हुए अप्रस्तुत के नवीन संदर्भों व स्त्रोतों का परीक्षण करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : अप्रस्तुत विधान, काव्य शिल्प, सम्प्रेषणोयता, मान–मूल्य, सौन्दर्यानुभूति, भावव्यंजक, विषयानुरुप, सादश्य, साधर्म्य और प्रभाव साम्य ।

प्रस्तावना

दूसरा सप्तक से काव्य लेखन की शुरूआत करने वाले रघुवीर सहाय की काव्य यात्रा ने प्रयोगवाद, नयी कविता, सोठोत्तरी कविता आदि के अनेक पड़ावों को पार किया है। इनकी कविता में प्रयोगवाद की प्रयोगधर्मिता, नयी कविता की बौद्धिक प्रतिष्ठा और समकालीन कविता की सपाटबयानी के दर्शन होते हैं। पत्रकारिता से जुड़े होने के कारण इन्होंने जीवन की वास्तविकता का यथार्थ अनुभव किया और राजनीतिक चालबाजी की कथनो–करनी के भेदभाव का यथार्थ दर्शन किया। सहाय जी कविताओं में जहाँ एक तरफ देशप्रेम और सम्मान का भाव है वही दूसरी तरफ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनता के धूमिल होते सपनों की तडफ है। प्रजातंत्र का मजाक बनाते नेताओं की बेईमानी, वादा खिलाफी और भ्रष्टाचारी से आहत सहाय का हृदय कह उठता है– ''बीस बरस बीत गये/लालसा मनुष्य की तिलतिल कर मिट गयी।''[1] सहाय जी यथार्थ को काव्य के लिए अनिवार्य मानते हुए विचार और वस्तु की एकरूपता पर बल देते हुए कहते हैं कि ''विचार वस्तु का कविता में खून की तरह दाड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है, और यह तभी सम्भव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हो।''[2] इसी यथार्थवाद को जब काव्य के परम्परागत शिल्प विधान के माध्यम से प्रकट करने में कवियों को कठिनाई महसूस होने लगी तो युगानुरूप परिस्थिति वश नवीन काव्य शिल्प के प्रमुख अवयव अप्रस्तुत का प्रयोग किया जाने लगा। अप्रस्तुत विधान कवि की अमर्त भावाभिव्यक्ति को नवीन रूप में प्रस्तुत करने का महत्त्वपूर्ण साधन बन गया जिसके अन्तर्गत भाषा को प्रतीक, बिम्ब, शब्द शक्ति और नवीन उपमान के द्वारा लाक्षणिकता, व्यंजकता और प्रभावात्मकता द्वारा समृद्ध किया गया। रघुवीर सहाय के 'सीढ़ियों पर धूप

में', 'आत्महत्या क विरूद्ध', हँसो–हँसों जल्दी हँसो', 'लोग भूल गये हैं', और 'कुछ पते कुछ चिट्टियाँ' काव्य संग्रह काव्य कला, वस्तु विधान, विषय वैविध्य तथा सहज शिल्प विधान की दृष्टि से हिन्दी कविता में अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। हिन्दी आलोचना में अप्रस्तुत विधान के विविध रूपा और प्रकारों का उल्लेख किया गया है। रघुवीर सहाय के काव्य में प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान का सूक्ष्म विश्लेषण करने के लिए अप्रस्तुत के प्रमुख प्रकारों यथा प्राकृतिक अप्रस्तुत, सांस्कृतिक अप्रस्तुत, दैनिक जीवन से गृहित अप्रस्तुत, वैज्ञानिक अप्रस्तुत, कलात्मक अप्रस्तुत प्रकारों में बांटा जा सकता है।

प्राकृतिक अप्रस्तुत

काव्य का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्रकृति का काव्य के प्रस्तुत और अप्रस्तुत पक्ष पर गहरा प्रभाव पड़ता है। एक तरह से कहा जा सकता है कि प्रकृति उपमानों, प्रतीकों और बिम्बों का अक्षय स्त्रोत है। ''भारतीय सौन्दर्य संबंधी उद्‌भावनाओं की प्रधान–प्रेरणा–स्त्रोत प्रकृति रही है। प्रकृति के नानाविध दृश्य विधानों से भारतीय कवि और कलाकार ने न केवल सौन्दर्य का अनुभव तथा आदर्श ग्रहण किया है, बल्कि उसने नारी पुरूष के सौन्दर्य कल्पना के लिए प्रकृति के बिम्ब ग्रहण का आश्रय भी गहण किया है।''[3] कवि प्रकृति से कटकर रह ही नहीं सकता है। वह प्रकृति ही है जो कवि के सौन्दर्य बोध को समृद्ध करती हुई उसकी सौन्दर्य दृष्टि को परिष्कृत करती है। कवि प्रकृति के जड़ और चेतन पदार्थों स अपने अप्रस्तुत विधान हेतु आवश्यक सामग्री का चयन कर लेता है। प्रकृति से सौन्दर्य सम्बन्धी उपमानों का ग्रहण कवि के भावुक हृदय की प्रतिभा का ही प्रतिफल होता है। परन्तु यह प्रयोग तभी सफल होगा जब कवि कल्पना से स्फूर्त होकर अपने मार्मिक मनोभावों की सफल अभिव्यक्ति करने में ईमानदार प्रयास करेगा। प्राकृतिक अप्रस्तुतों का सर्वाधिक पयोग छायावादी कविता में हुआ है परन्तु नयी कविता में भी कवियों ने इस प्रकार का प्रशंसनीय प्रयास किया है। रघुवीर सहाय के काव्य में प्रकृति से ग्रहित अप्रस्तुतों का प्रयोग जड़ और चेतन अनेक पदार्थों से अपना सौन्दर्य प्रकट करता है।

'वसन्त' शीर्षक कविता में प्राकतिक अप्रस्तुत का स्वरूप इस प्रकार है– ''वन की रानी, हरियाली सा भोला अन्तर,/सरसों के फूलों–सी जिसकी खिली जवानी/पकी फसल सा गरूआ गदराया जिसका तन।/अपने प्रिय को आता देख लजायी जाती।/गरम गुलाबी शरमाहट सा हल्का जाड़ा,/स्निग्ध गेहुँए गालों पर कानों तक चढ़ती लालो जैसा फैल रहा है।''[4] प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने नायिका पर वसन्त आगमन पर होने वाले परिवर्तनों को प्रकट किया। हृदय पर वन की रानी हरियाली का प्रयोग बड़ा सार्थक है क्योंकि हरियाली प्रसन्नता का प्रतीक है। जवानी को सरसों के खिले फूलों से उपमित किया गया है क्योंकि जवानी और सरसों के फूल की मादकता में प्रभाव साम्य है। इसी प्रकार फसल पकने पर वह अपने रस से गदरा जाती है और जवानी आने पर तन भी गदरा जाता है। नायिका के गालों और स्निग्ध गेहुँए में रूप साम्य है। वसन्त आगमन पर गुलाबी सर्दी का एहसास कवि को नायिका के गालों पर फैली लाली जैसा लग रहा है। अतः कहा जा सकता है कि कवि द्वारा गृहित प्राकृतिक अप्रस्तुत सफल है। 'पहला पानी' शीर्षक कविता में कवि ने वर्षा ऋतु की सुषमा का वर्णन इस प्रकार किया है– धीरे–धीरे पूरब से आती हुई हवा/चारों दिशाओं में गयी फेल/ढँक गये शीत स चौडे–चौड़ खेत, घर/धरती परती घर, गलिहारे सब जुड़ा गये/धीरे–धीरे संध्या की–सी बदली छायी/दुपहर जल से गरूई हो कर कुछ झुक आयी।''[5] पूर्व दिशा से आने वाली हवा चारों दिशाओं में फैल गयी है और उसके वेग से पराजित होकर विस्तृत खेत ढक गये हैं। धरती के जलमग्न हो जाने के कारण घर और गलियारे एकाकर से दिखायी पड़ रहे हैं। बदली और संध्या में रूप साम्य का प्रभाव प्रकट किया गया है। बदली छाने से दिन में उसी प्रकार का अंधकार फैल गया है जैसा संध्या होने पर होता है। बदली पर संध्या का आरोप सार्थक बन पड़ा है।

अतः कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय के काव्य में भले ही प्राकृतिक अप्रस्तुतों का सीमित प्रयोग हुआ है फिर भी कवि ने अपनी प्रतिभा के बल पर उनको सार्थकता प्रदान की है। प्राकृतिक अप्रस्तुतों का युगानुरूप प्रयोग कवि प्रतिभा का ही प्रतिफल है।

सांस्कृतिक अप्रस्तुत

अपस्तुत प्रयोग काव्य में अनेक रूपों में सामने आता है। जब इन अप्रस्तुतों का संबंध इतिहास, पुराण, धर्म, दर्शन और संस्कृति के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ जाता है, तब ये सांस्कृतिक उपमान या सांस्कृतिक अप्रस्तुत का रूप धारण कर लेते हैं। जब कवि अपनी अभिव्यक्ति को जीवन्तता प्रदान करने के उद्दश्य से धर्म, संस्कृति, पुराण, इतिहास और इतिहास के पात्रों या घटना–संदर्भों को माध्यम बनाता है, तब उसका यह कार्य अथवा प्रयोग विशिष्ट सांस्कृतिक उपमानों की सृष्टि करता है। सांस्कृतिक अप्रस्तुतों का प्रयोग आधुनिक हिन्दी कवियों ने प्रतीक रूप में अधिक किया है। यो उपमान एवं बिम्ब के रूप में भी ऐसा अप्रस्तुत विधान हुआ है। रघुवीर सहाय के काव्य संसार में भी ऐसे प्रयोग दिखायी पड़ते हैं। इन्होंने अपने भावों की सशक्त अभिव्यक्ति हेतु प्रतीक रूप में अनेक सांस्कृतिक अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है। 'दाता, तुझकों क्या मतलब' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि ने निर्धन जनता की जिजीविषा का वर्णन किया है– ''उनकी सहिष्णुता की सीमा से दाता/तुझको क्या मतलब/वे जीवित रहते हैं जीवित ही रहने के लिए नहीं/तू देता है कष्ट, और कुछ तू दे ही क्या सकता है/वे सहते ह कुछ मतलब से, कुछ सहने के लिए नहीं।''[6] प्रस्तुत उदाहरण से 'दाता' उस ईश्वर का प्रतीक है जो समस्त संसार का पालन–पोषण करता है। कवि कहना चाहता है कि हे ईश्वर उस गरीब जनता की कष्ट सहन करने की क्षमता अपार है और वे अपने जीवन में आने वाले समस्त दुःखों को ईश्वर प्रदत्त समझ कर सहन कर लेते हैं पर इससे आपको क्या है। 'भक्ति है यह' शीर्षक कविता में रघुवीर सहाय ने आधुनिक संदर्भ भक्ति के वास्तविक अर्थ को वाणी देने का प्रयास किया है– ''भक्ति है यह, ईश–गुण–गायन नहीं है/ यह व्यथा है, यह नहीं दुःख की कथा है/यह हमारा कर्म है, कृति है/ यही निष्कृति नहीं है/यह हमारा गर्व है/यह साधना है–साध्य विनती है।''[7] प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने भक्ति को ईश गुण–गान नहीं मानते हुए पूर्ण समर्पण माना है।

सहाय जी का विचार है कि अब ईश्वर का गान ही आवश्यक नहीं है। जीवन के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए अब हमें ऐसी भक्ति करनी होगी। जो श्रम सिद्धांत पर आधारित हो। इसी प्रकार व्यथा केवल दुःख की कथा ही नहीं बल्कि हमारे कर्म में हुई शिथिलता की दास्तान है। अब हमें ऐसी साधना करनी होगी जो विनम्रता के साथ विश्वास भी दे सकें। ईश गुण–गान, भक्ति, कर्म साधना आदि शब्द धार्मिक प्रवृत्ति के सूचक है।

'लोग भूल गये हैं' काव्य संगह में भी सांस्कृतिक अप्रस्तुत के विभिन्न रूप प्रकट हुए है– यह जो समझ है इतिहास की भ्रष्ट है/यह अत्याचार को शाश्वत रखने की/अन्यायी भाषा है कि जिसके प्रतिष्ठान में विद्या बन्द है/विद्या जो मुक्त हमें करती है वह विद्या।''[8] ''धर्माधिराज हल्के–हल्के मुस्काते थे/वह सोच रहे थे होकर मेरे वशीभूत/ये सभी जगह से ठुकराये भारत सपूत/मेरी निश्छलता से हो जायेंगे परास्त''[9] ''यह संस्कृति उसको पोसती है जो सत्य से विरक्त है/ देह से सशक्त और दानशील धीर है/भड़ककर एक बार जो उग्र हो उसे तुरन्त मार देती है।''[10] प्रथम उदाहरण में आया हुआ 'इतिहास' शब्द प्रतीक है उस अन्याय और अत्याचार शासन तंत्र का जिसने निर्बल और गरीब का शोषण किया है। कवि का मत है जो इतिहास की दुहाई देते हैं वे अत्याचार को शाश्वत बनाये रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। उस इतिहास ने यथार्थ से परिपूर्ण ऐसे ज्ञान को बन्दी बना कर रखा है जो मानव मुक्ति का बल है। दूसरे उदाहरण में प्रयुक्त 'पौराणिक पात्र' धर्माधिराज की छवि जनमानस में एक न्याय प्रिय और कर्मानुरूप फल देने वाले की है। आधुनिक संदभ में धर्माधिराज ने अपनी नीति परिवर्तित कर ली, वे अब अपनी निश्चलता से परास्त सभी जगह स ठुकराये हुए भारत सपूत की विवशता पर हल्के–हल्के मुस्कुराते हैं। यहाँ परास्त मानव की विवशता प्रकट हुई है। अन्तिम उदाहरण में संस्कृति में आ रहे बदलाव कि नवीन परिभाषा प्रकट की गयी है। कवि का मत है कि आधुनिक संस्कृति सत्य से विरक्त अन्यायी और अत्याचारी का पोषण करती है और सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाती है। देह से समर्थ और दानशील धीर गम्भीर व्यक्ति यदि ऐसी कुमार्गी संस्कृति के अत्याचारों से आहत होकर यदि एक बार भी उग्र स्वर में इसका विरोध करता है तो यह अन्याय का पोषण करने वाली अत्याचारी संस्कृति ऐसे व्यक्ति को तुरन्त मार देती है। संस्कृति का नवीन रूप में प्रयोग कवि की आहत मनोभावना का प्रतिफल है।

अतः कहा जा सकता है कि आधुनिक कविता में सांस्कृतिक अप्रस्तुतों का नवीन संदर्भ व उपमान रूप में प्रयोग कवि की काव्य प्रतिभा का ही उदाहरण है।

दैनिक जीवन से गृहित अप्रस्तुत

आधुनिक कवि अपनी अनुभूति को सम्प्रेषित करने लिए व्यावहारिक जीवन तथ्यों एवं वस्तुओं के रूप का अपने काव्य में अप्रस्तुत रूप में प्रयोग करने से भी नहीं चूका है। जीवन से सर्वथा असम्बद्ध अप्रस्तुत काव्य की प्रभावी अभिव्यक्ति करने में समर्थ नहीं हो सकता है। आधुनिक कविता में कही फोन पर बातचीत को कविता का आधार बनाया गया है, तो कही किसी साधारण व्यक्ति की दिनचर्या को। रघुवीर सहाय ने तो मरघट और शोकसभा जैसे विषयों पर भी प्रभावी काव्य सृजन किया है। इससे स्पष्ट होता है कि इन कवियों ने अपने आस–पास के परिवेश और निम्न मध्यवर्गीय व्यक्तियों के जीवन को सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। यही कारण है कि वे अपनी कविताओं में दैनिक जीवन के अप्रस्तुतों का सफल प्रयोग कर सके हैं। इस बारे में डॉ. विनय कुमार ने लिखा है कि ''यह रोजमर्रा का संसार जिस परिवश में स्थित है, कविता में उसका निश्चित भूगोल है। इस परिवेश से ही अर्थ, राजनीति, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की इतनी बहुआयामी सच्चाईयाँ निकलती हैं कि हम भारत में स्वतंत्रता के तीन दशक बाद एक औसत आदमी किस तरह का जीवन जी रहा था और क्या सोच रहा था, उसके भीतर का संसार किस तरह बन बिगड़ रहा था, इसकी अनेक छवियाँ पा सकते हैं।''[11] रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में रामदास, मैकू और दयाशंकर जैसे अति साधारण पात्रों के जीवन से भी अप्रस्तुतों का चयन किया है। दूसरा सप्तक की 'मुँह अँधेरे' शीर्षक कविता में कवि ने प्रातः काल से पूर्व की नीरवता का इस रूप में वर्णन किया है– ''किसी दिन जाग के संयोग से मैं चिड़ियों के संग,/गर्म बिस्तर से तनिक उठ के/वातायन से बाहर देखता हूँ/ निःस्व है जग, तूफान आने के प्रथम सागर–सा''[12] प्रस्तुत उदाहरण में सहाय जी ने भोर से पूव के शांत वातावरण की समानता तूफान आने से पूर्व सागर की निश्छलता से की है। प्रातःकालीन वातावरण को अप्रस्तुत का माध्यम बनाया गया है।

इसी प्रकार सायंकाल को होने वाले दैनिक कार्यकलापों का अप्रस्तुत रूप में प्रयोग इस प्रकार किया गया है–''अब शीतल जल की चिन्ता में/लगती बहुओं की भीड़ कूएँ पर/ मँजी गगरियों पर से किरणें घूम–घूम/ छिपती जाती पनिहारिन के साँवल हाथों की चुड़ियों में/ धीरे–धीरे झुकता जाता है शरमाये नयनों सा दिन।''[13] प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने सायकाल कूए पर जल भरने वाली बहुओं के दैनिक अप्रस्तुत का वर्णन किया है। मंजी गगरियों से होकर सूर्य की अन्तिम किरणें पनिहारियों के हाथों की चूड़ियों में छिपकर कवि को ऐसा आभास दे रही मानों जैसे साँवला व्यक्ति प्रकाश में आने पर अपने साँवले पन के कारण लज्जा से अपने नेत्रों के झुका लेता है और धीरे–धीरे दिन का डूबना उन पनिहारियों के झूके नेत्रों का ही प्रतिबिम्ब है। नेत्रों में झुकने पर दिन के डूबने का आरोप सार्थक अप्रस्तुत बन पड़ा है। 'सीढ़ियों पर धूप में' संग्रह की 'हमने यह देखा' शीर्षक कविता में कवि में जूते में गढ़ने वाली कील को अप्रस्तुत रूप में इस प्रकार प्रयुक्त किया है– ''यह क्या है जो इस जूते में गड़ता है/यह कील कहाँ से रोज निकल जाती है/ इस दुःख को रोज समझना क्यों पड़ता है।''[14] प्रस्तुत उदाहरण में सहाय जी ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि जूतें में रह–रह कर चुभने वाली कील का दर्द, उस रोज उठन वाले दुःख के समान है जो भ्रष्ट शासन तंत्र की देन है। व्यक्ति समाज में रहकर दर्द से बच नहीं सकता है। कील की चुभन और दुःख की समानता प्रकट की गयी है। 'सपने में देखा' शीर्षक कविता में दर्पण देखने को अप्रस्तुत रूप में प्रयुक्त किया गया है–''सबुह उठ दर्पण के सम्मुख आया तो मन कैसा हो गया/ जिस की कुशलता के लिए चित्त हर समय

अकुलाता करता है/ उसे क्यों नहीं देखा?''[15] दर्पण की यह विशेषता होती है कि वह अपने सामने पड़ने वाली हर वस्तु की यथार्थ स्थिति का दर्शन करा देता है। कवि कहता है कि जब सुबह उठकर मैंने दर्पण के सम्मुख अपना प्रतिबिम्ब देखा तो मेरा मन उदास हो गया और मन मे विचार आया कि जिस वैचारिक कौशल से जीवन की अकुलाहट को दूर करने का मैंने प्रयत्न किया था उसका रूप परिवर्तित हो गया है। अत्याचारी शासन तंत्र ने जनता को दबाकर उसकी आत्मा को मार डाला है। आधुनिक समाज में पूँजीवादी व्यवस्था के कारण लोगों के बीच बढ़ रहे अलगाव और अजनबीपन को रघुवीर सहाय ने 'प्रभु की दया' शीर्षक कविता में इन अप्रस्तुतों के माध्यम से प्रकट किया है–''बिल्ली रास्ता काट जाया करती है/प्यारी–प्यारी औरतें हरदम बक–बक करती रहती हैं/चाँदनी रात को मैदान में, खुले मवेशी/आ कर चरते रहते हैं/ और प्रभु यह तुम्हारी दया नहीं तो और क्या है/कि इनमें आपस में कोई सम्बन्ध नहीं।''[16] प्रस्तुत उदाहरण में जहाँ बिल्ली का रास्ता काटना संशय को उत्पन्न करता है वहीं औरतों का बक–बक करना, नेताओं की निरर्थक बातों का सूचक है, साथ ही खुले जानवरों द्वारा मैदान को चरना यह भाव प्रकट कि जैसे भ्रष्ट शासन तंत्र की सन्तति अन्याय, हिंसा और भ्रष्टाचार देश को खाकर समाप्त करना चाहते हैं। यहाँ सामान्य जीवन की घटनाओं का अप्रस्तुत रूप में प्रकट किया गया है। अतः रघुवीर सहाय के काव्य को दैनिक जीवन से गृहित अप्रस्तुतों के माध्यम से सार्थक कहा जा सकता है।

वैज्ञानिक अप्रस्तुत

आधुनिक युग विज्ञान की धरोहर है। विज्ञान के कारण हमारा जीवन काफी बदल चुका है। वैज्ञानिक दृष्टि के कारण प्राचीन मान–मूल्यों के प्रति अब हमारा विश्वास कम होता जा रहा है। ऐसे वातावरण में कविता का विज्ञान से अछूता रहना लगभग असंभव सा है। आधुनिक हिन्दी कविता में प्रगतिवादी काव्य धारा से वैज्ञानिक अप्रस्तुतों का प्रयोग माना जा सकता है और इसके बाद तो इनके प्रयोग बहुतायत म देखे जा सकते हैं। वैज्ञानिक संसार के अप्रस्तुतों का काव्य में सार्थक प्रयोग तभी माना जा सकता है जब वह कवि की मूलभावना को पूर्णतः सम्प्रेषित करने में सफल हो। विज्ञान के क्षेत्र से ग्रहण किये गये अप्रस्तुत विधान ने कला एवं सौन्दर्य संबंधी परम्परागत सिद्धांतों को काफी हद तक खण्डित करने का प्रयास किया। रघुवीर सहाय के काव्य में वैज्ञानिक अप्रस्तुतों का प्रयोग भले ही कम हुआ है, परन्तु फिर भी इनकी उपयोगिता कम नहीं हैं। 'दूसरा सप्तक' की 'अनिश्चय' शीर्षक कविता में प्रयुक्त वैज्ञानिक अप्रस्तुत का स्वरूप कुछ इस प्रकार है– ''मेरे प्राणों के पहिए भूमि बहुत नाप चुके/सिनेमा की रीलों–सा कम के लिपटा है सभी कुछ।''[17] प्रस्तुत कविता में 'सिनेमा की रीलों सा' वैज्ञानिक अप्रस्तुत का कवि ने बड़ा सार्थक प्रयोग किया है। यहाँ कवि का अभिप्राय है कि जैसे सिनेमा की रीलें एक दूसरे पर परत दर परत कसावट के साथ लिपटी रहती है वैसे ही मेरे मन में विचारों की दृढ़ता है। मैं अपने इरादों से पीछे नहीं हटूगाँ। कवि ने प्राणों के पहिए और सिनेमा की रीलों में आकार गत समानता को भी ध्यान में रखा है। अतः यह अप्रस्तुत कवि की भावाभिव्यक्ति को सम्प्रेषित करने में पूरी तरह सफल कहा जा सकता है। 'सीढ़ियों पर धूप में' काव्य संग्रह में भी वैज्ञानिक अप्रस्तुतों का प्रयोग दिखायी पड़ता है। 'धूप' शीर्षक कविता में इस प्रकार का प्रयोग हुआ है– ''देख रहा हूँ, लम्बी खिड़की पर रक्खे पौधे/धूप की ओर बाहर झुके जा रहे हैं, हर साल को तरह''[18] प्रस्तुत कविता में प्रयुक्त 'धूप की ओर बाहर झुकना' वैज्ञानिक अप्रस्तुत है, जो विज्ञान के इस सिद्धांत पर आधारित की पौधे हमेशा प्रकाश की दिशा में मुड़ जाते है; इसे 'तापानुवृत्ति' कहा जाता है। यहाँ कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि स्वार्थी प्रवृत्ति का व्यक्ति हमेशा उसी दिशा में झुका रहता है जहाँ से उसे अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति होती दिखायी देती है। यह हमारी भाषा में स्वार्थ पूर्ति सिद्धांत कहा जा सकता है। रघुवीर सहाय इस अप्रस्तुत के माध्यम से अपने भाव को व्यक्त करने पूर्ण रूप से सफल हुए है।

'हँसो–हसो जल्दी हँसो' काव्य संग्रह की 'आज का पाठ है' कविता में कवि का वैज्ञानिक अप्रस्तुत इस रूप में प्रकट हुआ है– ''सौ मोटी गरदनें झुकी हैं, बुद्धि के बोझ से,/श्रद्धा से, कि लज्जा से,/मैं सिर्फ उन गंजी चाँदों पर टकटकी बाँधे रहूँगा/अपनी मरी हुई मशीनगन की टकटकी।''[19] पस्तुत उदाहरण में 'मशीनगन' का अप्रस्तुत प्रकट हुआ है। कवि का अभिप्राय है कि वैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार भारी वस्तु हमेशा गुरूत्वाकर्षण बल के कारण पृथ्वी की ओर खिचती है। मोटी गरदनों का बुद्धि, श्रद्धा और लज्जा के भार से झुकना कवि के इस अभिप्राय को स्पष्ट करता है कि आधुनिक मनुष्य यद्यपि बौद्धिक विचारों से सम्पन्न है, परन्तु भ्रष्ट शासन तंत्र ने उसको दबाकर झुका दिया है। मशीनगन एक ऐसा वैज्ञानिक आयुध जो सब कुछ नष्ट–भ्रष्ट कर देने की क्षमता रखता है। इसी प्रकार व्यक्ति की आँखें एक ऐसा हथियार है, जिसमें शब्दों के बाणा से अधिक तीक्ष्णता होती है। झुके हुए सिरों की नगी चाँद से कवि मशीनगन के विनाश को प्रकट कर रहा है। कवि का विचार एक नई दिशा का सूचक है।

'लोग भूल गये हैं' काव्य में कवि ने आधुनिकता की दौड़ में अपने प्राचीन मानव मूल्यों को भूलते जा रहे मनुष्य की पीड़ा का वर्णन किया है। प्रस्तुत संग्रह की 'बचपन' शीर्षक कविता में वैज्ञानिक अप्रस्तुत को घड़ी के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है– ''खुशियों की एक दुनिया एक घड़ी की तरह जी रही है/बेबस जिन्दगी में टिक–टिक है।''[20] प्रस्तुत कविता में घड़ी के अप्रस्तुत के माध्यम से रघुवीर सहाय ने यह बताने का प्रयास किया है कि आज का मनुष्य अपनी बेबस जिन्दगी में घड़ी के समान निरन्तर यांत्रिक जीवन जीता चला जा रहा है। घड़ी जिस प्रकार समय की सही गति बताकर हर कार्य की दिशा तय करती है उसकी प्रकार लोग भी उसकी टिक–टिक ध्वनि से अपने जीवन में आने वाली खुशियों की आहट को सुनता हुआ उनके प्रति आशान्वित बना रहता है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय का रचना संचार वैज्ञानिक अप्रस्तुतों से अछूता नहीं है भले इनका प्रयोग मात्रा में कम हुआ है फिर भी ये कवि के मन्तव्य को पूर्णतः स्पष्ट कर सके हैं।

कलात्मक अप्रस्तुत

मानव द्वारा निर्मित वस्तु जगत् के अन्तर्गत संगीतकला, नृत्यकला, चित्रकला और स्थापत्य कला जैसी अनेक कलाओं का सौन्दर्य प्रकट हुआ है। कवि जब अपने काव्य मन्तव्य को सम्प्रेषित करने के लिए इन कलाओं से अपने अप्रस्तुत का चयन करता है तो उसे कलात्मक अप्रस्तुत कहा जा सकता है। रघुवीर सहाय के काव्य में इस प्रकार के अप्रस्तुतों का प्रयोग यद्यपि अल्प मात्रा में ही हुआ, परन्तु ये प्रयोग कवि की कला के प्रति सूक्ष्म दृष्टि और समझ को प्रकट करता है। सहाय जी ने कलात्मक अप्रस्तुतों का प्रयोग अपने काव्य में इस रूप में किया ह– ''अपनी एक मूर्ति बनाता हूँ और बिगाड़ता हूँ/और आप कहते हैं कि कविता की है क्या मुझे दूसरों को तोड़ने की फुरसत है?''[21]''अब से जो भी कुछ कहना हो वह/रंगों में ढाल लिया करना/यों इन गूँगें–बहरों को तुम/कुछ अपना हाल दिया करना।''[22] ''कला क्या है सिवाय इस देह मन आत्मा के/ बाकी समाज है/ जिसको हम जानकर समझकर/ बताते है औरों को, वे हमें बताते हैं।''[23] प्रथम उदाहरण में कवि ने मूर्ति का रूपक लेकर जनता के प्रति अपने रिश्ते की ईमानदारी और संवेदनशीलता को प्रकट करने का प्रयास किया है। कवि धोखे और बेईमानो के रिश्ते से बनी मूर्ति को ढहाना चाहता है और जनता से जुड़ाव के लिए एक रचनात्मक स्थिति कायम करते हुए कविता के माध्यम से अपना संदेश देना चाहता है। दूसरे उदाहरण में कवि ने 'रंग' का अप्रस्तुत लेकर यह स्पष्ट करना चाहा है कि रंग में स्थिति को स्पष्ट करने की क्षमता मौखिक अभिव्यक्ति से अधिक रहती है। कवि कहना चाहता है कि शासन तंत्र की चोट से गूँगे और बहरे हो चुके लोगों को अपने देश की स्थिति से रूबरू कराने में रंगों का प्रयोग प्रभावी हो सकता है। तीसरे उदाहरण में कवि ने कला को नवीन रूप में प्रकट करने का प्रयत्न किया है। कवि का मत है कला वास्तव में हर आदमी द्वारा अपने शरीर, मन और आत्मा की स्वार्थ पूर्ति के लिए अपनाये जाने वाले अनुचित मार्ग के सिवाय और कुछ भी नहीं है। समाज केवल स्वार्थपूर्ति का एक साधन है। कवि के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनानुभव से जो ज्ञान प्राप्त करता है वह उसे दूसरों को बताने का प्रयत्न करता है, परन्तु घमण्डी व्यक्ति उल्टा उसी का तिरस्कार करते हैं। अतः उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त निष्कर्ष रूप में यह कहा जात सकता है कि रघुवीर सहाय के काव्य में प्रयुक्त कलात्मक अप्रस्तुत कवि की मार्मिक भावाभिव्यक्ति को सार्थक रूप में प्रकट करने में सफल है।

निष्कर्ष

रघुवीर सहाय के काव्य संसार का अप्रस्तुत विधान की दृष्टि से विश्लेषण करने के उपरान्त कहा जा सकता है कि कवि ने युगानुकूल स्थिति को प्रभावी रूप में अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों से अप्रस्तुत का चयन किया है। अप्रस्तुत क लिए कवि ने बिम्ब व प्रतीकात्मक भाषा शेली का प्रयोग करते हुए अपने अमूर्त भावों को मूर्त करने का प्रयास किया है। रघुवीर सहाय ने अपने काव्य का विषय भाषा, स्त्री व बच्चों की पीड़ा, स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात् उत्पन्न मोहभंग की स्थिति, भ्रष्ट नेताओं की कथनी–करनी का भेद और 'मार तमाम लोगों' पर होने वाले अन्याय और अत्याचार को बनाया। प्रस्तुत विषय की प्रभावी एवं मार्मिक भावाभिव्यक्ति के लिए रघुवीर सहाय द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान सटीक, सार्थक, सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति की रमणीय, भावव्यंजक और विषयानुरूप सम्प्रेषण में सफल हुआ है। रघुवीर सहाय ने अपने अप्रस्तुत विधान में सादृश्य, साधर्म्य और प्रभाव साम्य का समावेश किया है। अतः कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय का अप्रस्तुत विधान कवि प्रतिभा की सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टि से बड़ा ही सार्थक बन पड़ा है।

संदर्भ सूची

1. रघुवीर सहायः आत्महत्या के विरूद्ध : एक अधेड भारतीय आत्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. तीसरा संस्करण 2009 पृ.सं. 95।
2. सं.अज्ञेयः दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन पृ. सं. 139।
3. 'कल्पना' के अगस्त 1963 में प्रकाशित डॉ. रघुवंश के निबंध 'संस्कृत काव्य में प्रकृति की परिकल्पना, पृ. 591।
4. सं.अज्ञेयः दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन : वसन्त, पृ. सं. 140।
5. सं.अज्ञेयः दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन : वसन्त, पृ. सं. 141।
6. रघुवीर सहाय (सं. अज्ञेय) सीढ़ियों पर धूप में : दाता, तुझको क्या मतलब, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम सं.1960 पृ. सं. 95।
7. वही : भक्ति है यह, पृ. सं. 144।
8. रघुवीर सहाय लोग भूल गये है : भविष्य, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली तीसरी आवृत्ति 2002 पृ. सं. 22।
9. वही : हिंसा, पृ. सं. 31।
10. वही : पृ. सं. 48।
11. विनय कुमार : साठोत्तरी कविता, परिवर्तित दिशाएँ, पृ. सं. 133।
12. सं.अज्ञेयः दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन : मुँह अँधेरे, पृ. सं. 151।
13. सं.अज्ञेयः दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन : सायंकाल : पृ. सं. 153।
14. रघुवीर सहाय (सं. अज्ञेय): सीढ़ियों पर धूप में : हमने यह देखा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम सं. 1960 पृ. सं. 76।
15. रघुवीर सहाय (सं. अज्ञेय): सीढ़ियों पर धूप में : सपने में देखा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम सं. 1960 पृ. सं. 102।
16. रघुवीर सहाय (सं. अज्ञेय): सीढ़ियों पर धूप में प्रभु की दया, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम सं. 1960 पृ. सं. 113।
17. सं.अज्ञेयः दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, अनिश्चय, पृ. सं. 149।
18. रघुवीर सहाय (सं. अज्ञेय): सीढ़ियों पर धूप में : धूप, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम सं. 1960 पृ. सं. 131।
19. रघुवीर सहायः हँसों हँसो जल्दी हँसो : आज का पाठ है, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली प्रथम सं. 1975 पृ. सं. 8।

20. रघुवीर सहायः लोग भूल गये हैं : बचपन, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.नई दिल्ली तीसरी आवृत्ति 2002 पृ. सं. 60।
21. रघुवीर सहायः आत्महत्या के विरूद्ध : नेता क्षमा करें, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.नई दिल्ली तीसरा सं. 2009 पृ. सं. 18।
22. रघुवीर सहाय (सं. अज्ञेय): सीढ़ियों पर धूप में : अब से जो कुछ भी कहना हो, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम सं. 1960 पृ. सं. 127।
23. रघुवीर सहायः लोग भूल गये हैं : कला क्या है, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली तीसरी आवृत्ति 2002 पृ. सं. 12।